



पोषण से भरपूर शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रीय फल

अरविंद कुमार सिंह, डी. एस. मिश्रा, जगदीश राणे और आनंद साहिल

भारतीय शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसमें मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश इत्यादि क्षेत्र शामिल हैं। ये क्षेत्र अत्यंत कठोर एवं विषम जलवायु परिस्थितियों के लिए जाने जाते हैं। यहाँ वार्षिक वर्षा केवल 100 से 500 मि.मी. के बीच होती है तथा वर्षा का वितरण अत्यंत अनियमित रहता है। वर्षा की परिवर्तनशीलता का गुणांक 40 से 70 प्रतिशत तक पाया जाता है, जिससे कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्र में तापमान 1° से 48° से. तक पहुँच जाता है, तेज हवाएँ चलती हैं तथा मृदा प्रायः रेतीली, कंकरीली, पथरीली प्रकृति की होती हैं। इन मृदा की जल धारण क्षमता अत्यंत कम होती है तथा इनमें जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है। कई स्थानों पर मिट्टी अत्यधिक गहरी अथवा उथली होती है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। इसके साथ ही भूमिगत जल प्रायः गहरे स्तर पर उपलब्ध होता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में केवल वे ही फल फसलें सफलतापूर्वक विकसित हो सकती हैं, जो कम पानी, अधिक तापमान एवं लवणीय परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती हैं।

शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सीमित जल संसाधनों के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त करना है। बढ़ते जैविक एवं अजैविक दबावों के कारण कृषि प्रणाली पर अतिरिक्त भार पड़ रहा है। उच्च तापमान, अनियमित वर्षा तथा तेज हवाएँ फसल उत्पादकता को सीमित करती हैं, परंतु

यही परिस्थितियाँ कुछ विशेष फल फसलों की उत्कृष्ट गुणवत्ता के लिए अनुकूल सिद्ध होती हैं।

इन क्षेत्रों में बेल, बेर, आँवला, फालसा, शहतूत, करौंदा तथा लसोड़ा जैसी फल फसलें सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। ये फसलें न केवल कम पानी में अच्छी उपज देती हैं, बल्कि इनमें पोषण एवं औषधीय गुण भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, आँवला विटामिन 'सी' का उत्कृष्ट स्रोत है,

जबकि बेल एवं बेर सूखा सहनशीलता के कारण शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं।

वर्तमान समय में यह अनुभव किया जा रहा है कि पारंपरिक कृषि क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि की संभावनाएँ सीमित हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में शुष्क क्षेत्रों में बागवानी फसलों का विकास कृषि क्षेत्र के लिए एक नई दिशा प्रदान कर सकता है। नई उन्नत किस्मों के विकास, आधुनिक कृषि तकनीकों के उपयोग तथा

केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र (भाकृअनुप-सीआईएएच) गोधरा-वडोदरा राजमार्ग, वेजलपुर-389340, गोधरा, पंचमहल, गुजरात

वैज्ञानिक प्रबंधन के कारण शुष्क बागवानी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन क्षमता में कई गुना वृद्धि हुई है।

शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली कम उपयोगी फल फसलें पोषण, औषधीय गुणों तथा आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें कम वर्षा, उच्च तापमान एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं।

इनमें बेल, आँवला, करौंदा, फालसा, कैथ, महुआ, इमली एवं लसोड़ा जैसी फसलें किसानों के लिए आय का अच्छा स्रोत बन सकती हैं। वैज्ञानिक खेती पद्धतियों को अपनाकर इन फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। साथ ही, इन फसलों का संरक्षण एवं व्यावसायिक उपयोग शुष्क क्षेत्रों की कृषि एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बेल

बेल, भारत का एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण औषधीय फल वृक्ष है, जिसका उल्लेख वैदिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में मिलता है। यह रूटेसी कुल का पौधा है तथा इसे बेल, बिल्व, श्रीफल एवं दिव्य फल जैसे नामों से



बेल-थार गौरी के पौष्टिक फल

भी जाना जाता है। बेल की खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा एवं छत्तीसगढ़ के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है।

बेल के फल, पत्तियाँ, जड़, छाल एवं बीज सभी औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं

तथा आयुर्वेद में इनका उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। इसके फल में एंटीऑक्सीडेंट, फिनोलिक यौगिक एवं विटामिन पाए जाते हैं, जो पाचन तंत्र, हृदय एवं स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। पके फलों का उपयोग स्ववैश, जैम, नेक्टर, टॉफी, आरटीएस एवं पाउडर जैसे मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है, जबकि कच्चे फलों से मुरब्बा एवं अचार बनाया जाता है। अर्धपके फल अतिसार एवं पेचिश के उपचार में उपयोगी माने जाते हैं तथा इसे पेट संबंधी रोगों के लिए रामबाण फल माना जाता है।

बेल का वृक्ष सूखा, उच्च तापमान एवं लवणीय मिट्टियों को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए यह शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त फल फसल है। इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली दोमट भूमि में की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः 8×8 मीटर दूरी पर लगाया जाता है तथा सघन बागवानी के लिए 5×5 मी. पर लगाया जाता है जिसके लिए गोमा यशी सबसे उपयुक्त प्रजाति है। कलम अथवा ग्राफ्टेड पौधों में तीसरे वर्ष से फल लगना प्रारंभ हो जाता है तथा 10 वर्ष की आयु में एक वृक्ष से लगभग 80-160 किलोग्राम फल प्राप्त हो सकते हैं।

फल पकने में लगभग 9-11 माह का समय लेते हैं तथा परिपक्व फलों की तुड़ाई सावधानीपूर्वक डंटल सहित करनी चाहिए। 'गोमा यशी', 'थार दिव्या', 'थार प्रकृति', 'थार भव्या', 'थार गौरी', 'थार शिवांगी',

चुनौतियों का समाधान

शुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी विकास के समक्ष अनेक समस्याएँ भी विद्यमान हैं। इनमें सबसे प्रमुख समस्या गुणवत्तापूर्ण बीज एवं पौध सामग्री की कमी है। फल फसलों में उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन के लिए उत्तम रोपण सामग्री अत्यंत आवश्यक होती है। यदि किसानों को प्रमाणित एवं गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री समय पर उपलब्ध हो सके, तो उत्पादन एवं उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। कटाई उपरांत प्रबंधन भी शुष्क क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण चुनौती है। फलों की ग्रेडिंग, पैकिंग, भंडारण, परिवहन एवं विपणन के दौरान भारी मात्रा में हानि होती है। वर्तमान में प्रसंस्करण अवसंरचना की कमजोरी के कारण कच्चे माल का समुचित उपयोग नहीं हो पाता, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। यदि आधुनिक प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना की जाए तथा मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया जाए, तो किसानों की आय में वृद्धि संभव है। विपणन व्यवस्था की कमजोरी भी उद्यानिकी विकास में एक प्रमुख बाधा है। किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता, जिसके कारण वे उद्यानिकी फसलों को अपनाने में संकोच करते हैं। संगठित विपणन प्रणाली, कोल्ड स्टोरेज, परिवहन सुविधाएँ तथा कृषि आधारित उद्योगों का विकास इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है।

उद्यानिकी क्षेत्र में एग्रीबिजनेस की अपार संभावनाएँ हैं। फल प्रसंस्करण, जैम, जेली, स्ववैश, कैंडी तथा अन्य मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्पाद विविधीकरण एवं निर्यात को बढ़ावा देकर किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के कृषकों के समक्ष उचित भंडारण सुविधाओं का अभाव, ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग संबंधी ज्ञान की कमी तथा आधुनिक उपकरणों की अनुपलब्धता भी बड़ी समस्याएँ हैं। इसलिए किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन एवं आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

एन.बी.-5, एन.बी.-7, एन.बी.-9, सी.आई.एस.एच. बेल-1, सी.आई.एस.एच. बेल-2 एवं 'थार नीलकंठ' जैसी किस्में अधिक उत्पादन एवं उत्तम गुणवत्ता के लिए शुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त पाई गई हैं।

जामुन

यह एक महत्वपूर्ण पोषक एवं औषधीय फल वृक्ष है, जिसका मूल स्थान भारत माना जाता है तथा यह उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। इसके फल आयरन, शर्करा, खनिज, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होते हैं तथा पके फलों का उपयोग ताजा सेवन के साथ-साथ जैली, जैम, स्कवैश, सिरका, वाइन, आईसक्रीम एवं अचार बनाने में किया जाता है। जामुन का फल हल्के अम्लीय एवं मसालेदार स्वाद वाला होता है तथा इसका स्कवैश गर्मियों में अत्यंत शीतल एवं ताजगी प्रदान करने वाला पेय माना जाता है। इसके फल, बीज एवं सिरका औषधीय गुणों से युक्त होते हैं तथा मधुमेह, हृदय रोग, यकृत विकार एवं पाचन संबंधी समस्याओं के उपचार में उपयोगी माने जाते हैं। जामुन के बीजों में जम्बोसिन एवं ग्लाइकोसाइड जैसे तत्व पाए जाते हैं, जो रक्त में शर्करा नियंत्रण में सहायक होते हैं।

यह वृक्ष लवणीय, क्षारीय एवं जलभराव वाली भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है तथा 10.5 पी.एच. तक की क्षारीय मिट्टी एवं 350-500 मि.मी. वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। जामुन की लकड़ी अत्यंत मजबूत एवं जलरोधी होती है,



गुणकारी कैथ

जिसका उपयोग रेलवे स्लीपर, कृषि उपकरण एवं भवन निर्माण कार्यों में किया जाता है। 'गोमा प्रियंका', 'थार क्रांति', 'सी.आई.एस.एच. जे-37' एवं 'सी.आई.एस.एच. जे-42' इसकी व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त उन्नत किस्में हैं।



गुच्छों में इमली

इमली

इमली, लेग्यूमिनोसी कुल की एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फल वृक्ष प्रजाति है, जिसे सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी के लिए अत्यंत उपयोगी माना जाता है। शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में इसकी सूखा सहनशीलता एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में वृद्धि करने की क्षमता के कारण बंजर भूमि विकास में इसका विशेष महत्व है।

इमली के फल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं खनिजों से भरपूर होते हैं तथा इसके गूदे का उपयोग जूस, जैम, सिरप, कैंडी, सॉस एवं औषधीय उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। आयुर्वेद में इमली के गूदे को शीतल, पाचनवर्धक, रेचक एवं ज्वरनाशक गुणों वाला माना गया है, जबकि इसकी पत्तियाँ पशु चारे के रूप में उपयोगी होती हैं।

इमली की खेती गहरी, अच्छी जल निकास वाली दोमट अथवा जलोढ़ मिट्टी में सर्वोत्तम होती है, हालांकि यह लवणीय, क्षारीय एवं पथरीली भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यह वृक्ष उच्च तापमान (48° तक) एवं सूखे को सहन करने में सक्षम है तथा 500-1500 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि करता है।

भारत में विभिन्न उन्नत किस्में जैसे पी.के. एम.-1, अजंता, उरीगाम, प्रचलित हैं, जबकि 'गोमा प्रतीक एवं थार रश्मि' किस्म अधिक उत्पादन एवं बड़े फलों के लिए उपयुक्त पाई गई है। एक परिपक्व इमली वृक्ष से 150-200 किलोग्राम तक फल प्राप्त हो सकते हैं, जिससे यह शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत बनती जा रही है।

कैथ

कैथ रूटेसी कुल का एक महत्वपूर्ण शुष्क क्षेत्रीय फल वृक्ष है, जो भारत के मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह मुख्यतः गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक तथा राजस्थान के अरावली एवं हाड़ौती क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। यह एक कठोर, पतझड़ी एवं काँटेदार वृक्ष है, जिसके फल गोलाकार, कठोर छिलके वाले तथा सुगंधित मीठे गूदे से युक्त होते हैं। इसके पके फलों का उपयोग, शरबत, जैली एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। कैथ के पुष्प हल्के लाल रंग के होते हैं तथा फल बहुबीजी बेरी प्रकार के होते हैं, जिनमें गूदे के भीतर बीज उपस्थित रहते हैं। इसकी खेती शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा ग्राफ्टेड पौधों को सामान्यतः 5x5 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। कलम द्वारा तैयार पौधे रोपण के लगभग तीसरे वर्ष से फल देना प्रारंभ कर देते हैं तथा एक परिपक्व वृक्ष से लगभग 200-450 फल प्राप्त हो सकते हैं।



चिराँजी के परिपक्व फल

'थार गौरव' एवं 'थार प्रभा' इसकी उन्नत किस्में हैं, जिन्हें अधिक उत्पादन, बड़े फलों एवं शीघ्र फलन के लिए विकसित किया गया है, जो अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अनुकूल पाई गई है।

महुआ

यह एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी एवं सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी वृक्ष है, जिसकी खेती मुख्यतः उत्तर एवं मध्य भारत के मैदानी एवं वन क्षेत्रों में की जाती है। यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं गुजरात में व्यापक रूप से पाया

जाता है। महुआ के पुष्प, फल, बीज एवं लकड़ी सभी आर्थिक रूप से उपयोगी होते हैं तथा इसके पुष्प शर्करा, विटामिन एवं खनिजों से भरपूर होते हैं। इसके फूलों का उपयोग पारंपरिक पेय एवं आसवित मदिरा निर्माण में, जबकि फलों का उपयोग कच्चे एवं पके दोनों रूपों में किया जाता है।

महुआ के बीजों से प्राप्त तेल में लिनोलिक एवं असंतृप्त वसीय अम्ल पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं तथा साबुन, मोमबत्ती एवं स्नेहक उद्योगों में उपयोग किए जाते हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग दोना-पत्तल बनाने में तथा तेल निष्कर्षण के बाद बची खली का उपयोग जैविक खाद एवं कीटनाशी के रूप में किया जाता है।

महुआ की खेती शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा इसका प्रवर्धन मुख्यतः बीज द्वारा किया जाता है; यह सूखा सहनशील वृक्ष है। 'थार मधु' इसकी एक उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जिसे शुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती हेतु विकसित किया गया है।

खिरनी

यह उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय भारत का एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे बंजर एवं अनउर्वर भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसे भारत के विभिन्न राज्यों में आदिवासी समुदाय 'खिरनी' एवं 'रायन' नाम से जानते हैं तथा इसके ताजा फलों का स्थानीय स्तर पर व्यापक उपयोग किया जाता है।



बहुउपयोगी खिरनी

खिरनी के फल स्वाद में मीठे होते हैं तथा इनमें आयरन, खनिज, शर्करा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

इसके बीजों को भूनकर भी खाया जाता है, जिनका स्वाद मूंगफली जैसा होता है, हालांकि इनमें अल्कलॉइड होने के कारण सीमित मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह एक मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है, जिसका फैलाव अधिक होता है तथा इसे चीकू (सपोटा) के लिए सूखा सहनशील रूटस्टॉक के रूप में भी उपयोग किया जाता है। खिरनी का पौधा सूखा एवं अधिक वर्षा, दोनों परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखता है, इसलिए यह शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल मानी जाती है।

इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली भूमि में की जाती है तथा पौधों का प्रवर्धन मुख्यतः बीज एवं ग्राफ्टिंग द्वारा किया जाता है। 'थार ऋतुराज' देश की पहली उन्नत किस्म है, जो शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों में बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन देने के लिए विकसित की गई है।



औषधीय गुणों से भरपूर करौंदा

चिरौंजी

यह शुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी वृक्ष है, जिसका उपयोग कृषि वानिकी एवं

सामाजिक वानिकी में व्यापक रूप से किया जाता है। यह मुख्यतः उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं गुजरात के शुष्क पर्णपाती वनों में पाया जाता है। चिरौंजी का वृक्ष अत्यंत कठोर एवं सूखा सहनशील होता है तथा यह पथरीली, कंकरीली, लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है।

इसके पके फल स्वादिष्ट होते हैं, जबकि बीज की गिरी अत्यंत पौष्टिक एवं प्रोटीन तथा तेल से भरपूर होती है, जिसका उपयोग मिठाइयों एवं विभिन्न खाद्य उत्पादों में किया जाता है। इसकी लकड़ी भी उपयोगी एवं गुणवत्तायुक्त होती है, जिसका उपयोग विभिन्न घरेलू कार्यों में किया जाता है।

चिरौंजी की खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली गहरी दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है तथा इसका प्रवर्धन मुख्यतः सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग द्वारा किया जाता है। इसमें जनवरी-फरवरी में पुष्पण तथा इसमें फल अप्रैल-मई में पक कर तैयार हो जाते हैं। 'थार प्रिया' इसकी उन्नत किस्म है, जो शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

वनों की कटाई एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के कारण इस फसल में आनुवंशिक विविधता तेजी से घट रही है, इसलिए इसके संरक्षण एवं व्यावसायिक विस्तार की आवश्यकता है। इन दिनों अर्धशुष्क क्षेत्रों में इसकी मांग बढ़ती जा रही है।

करौंदा

लसोड़ा

लसोड़ा एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे इंडियन चेरी, गोंदा, लहसुआ एवं गूँदा के नाम से भी जाना जाता है। यह मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र में बंजर भूमि, खेतों की मेड़ों तथा सड़क किनारे प्राकृतिक रूप से उगता है। लसोड़ा गर्म जलवायु की फसल है तथा पाले के प्रति संवेदनशील होता है, इसलिए इसकी खेती शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। इसके फल औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं तथा मूत्र संबंधी रोगों, उच्च रक्तचाप एवं मधुमेह में लाभकारी माने जाते हैं। लसोड़ा का वृक्ष 5-8 मीटर ऊँचा, अधिक शाखायुक्त होता है तथा इसके फल चिपचिपे, मीठे एवं स्वादिष्ट गूदे वाले होते हैं, जिनका उपयोग सब्जी, अचार एवं पेय पदार्थों में किया जाता है। इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली भूमि में बीज अथवा कलम द्वारा की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः 6x6 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से लगभग 30-45 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं तथा वर्षा ऋतु के बाद इसमें पुष्पण एवं लगभग दो माह बाद फलन होता है। 'थार बोल्ड' इसकी उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जो पूरे भारत में खेती हेतु उपयुक्त मानी जाती है।



लसोड़ा की फलन अवस्था



बहुउपयोगी लसोड़ा

करौंदा एपोसाइनेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फलदार झाड़ीदार पौधा है, जिसका मूल स्थान भारत माना जाता है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः बिहार, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में की जाती है।

यह शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों की अत्यंत सहनशील फसल है तथा उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में किसी भी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

व्यावसायिक खेती हेतु थार कमल, पंत मनोहर, पंत सुवर्णा, कोंकण बोल्ड एवं पंत सुदर्शन जैसी उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। इसके फल हरे, गुलाबी एवं सफेद रंग के होते हैं तथा इनमें प्रोटीन, वसा, खनिज, रेशा, खास करके लौह तत्व एवं कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

करौंदा के परिपक्व फलों का उपयोग अचार, कैन्डी एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली भूमि उपयुक्त होती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 2-3 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। बीजजनित प्रवर्धन के कारण फलों के आकार, रंग, गूदे की गुणवत्ता एवं उत्पादन में व्यापक विविधता पाई जाती है, जिससे चयन द्वारा उन्नत किस्मों के विकास की अच्छी संभावनाएँ हैं।

फालसा

फालसा टिलिएसी कुल का एक महत्वपूर्ण अल्प-उपयोगित फल वृक्ष है, जिसे भारत की प्राचीन फल फसलों में विशेष स्थान प्राप्त है। आयुर्वेदिक साहित्य में इसके फलों के औषधीय गुणों का उल्लेख मिलता है, जिसके कारण इसका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में भी किया जाता रहा है। यह फसल कम वर्षा एवं सीमित जल उपलब्धता वाली परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, इसलिए शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है। फालसा के पके फल बैंगनी से गहरे काले रंग के होते हैं तथा इनमें विटामिन ए, विटामिन सी एवं विभिन्न खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके फल हल्के अम्लीय स्वाद वाले होते हैं, जिनका उपयोग शीतल पेय, जूस, स्क्वैश, सिरप एवं कैन्डी जैसे प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

फालसा का पौधा झाड़ीदार स्वरूप का होता है, जिसकी शाखाएँ लंबी, पतली एवं झुकी



मरुस्थल में उपयोगी कैर

हुई होती हैं। वसंत ऋतु में इस पर पीले-नारंगी रंग के आकर्षक पुष्प आते हैं। यह फसल अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी में सर्वोत्तम उत्पादन देती है, हालाँकि इसे क्षारीय एवं अनुपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

फालसा उपोष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है तथा भारत के अधिकांश भागों में इसकी खेती की जाती है। फालसा में वार्षिक छंटाई अत्यंत आवश्यक कृषि क्रिया है, क्योंकि इसके फल वर्तमान मौसम की नई शाखाओं पर लगते हैं। उचित छंटाई से नई वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है तथा फल उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

फलों की तुड़ाई गर्मियों के दौरान क्रमिक रूप से की जाती है और एक परिपक्व पौधे से सामान्यतः 7-9 किलोग्राम तक फल प्राप्त होते हैं। चूँकि फालसा के फल अत्यंत नाशवान होते हैं, इसलिए उनकी शीघ्र विपणन अथवा प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है।



फालसा की प्रजाति-थार प्रगति

कैर

कैर शुष्क एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी पौधा है, जो भारत,

अफ्रीका एवं सऊदी अरब के शुष्क भागों में पाया जाता है। इसे राजस्थान में कैर, उत्तर प्रदेश में करील, गुजरात में केर तथा हरियाणा एवं पंजाब में डेला के नाम से जाना जाता है। यह अत्यंत कठोर एवं सूखा सहनशील झाड़ीदार पौधा है, जो रेतीली भूमि, बालू के टीलों, पथरीली एवं लवणीय भूमि में भी सफलतापूर्वक उगता है तथा मृदा अपरदन रोकने में सहायक होता है।

कैर में फलन की विविधता पाई जाती है तथा इसके फलों के आकार, रंग एवं गूदे की मात्रा में व्यापक आनुवंशिक भिन्नता देखने को मिलती है। इसके पौधे काँटेदार, पत्तीविहीन एवं अधिक शाखायुक्त होते हैं, जिनमें वर्ष में दो बार मार्च-अप्रैल एवं सितंबर-अक्टूबर में पुष्पन तथा मई-जून एवं नवंबर-दिसंबर में फलन होता है। कैर के कच्चे एवं पके फल कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन ए एवं सी से भरपूर होते हैं तथा इनका उपयोग सब्जी, अचार एवं सूखे उत्पादों के रूप में किया जाता है।

इसकी खेती बीज एवं कलम द्वारा की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 4-5 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। यह कम सिंचाई एवं न्यूनतम देखभाल में भी अच्छा उत्पादन देता है। एक परिपक्व कैर पौधे से लगभग 10-20 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं तथा यह शुष्क क्षेत्रों में किसानों के लिए आय एवं पोषण का महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो रहा है।

शहतूत

शहतूत मोरेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी फल एवं रेशम उत्पादन हेतु

उपयोगी वृक्ष है, जिसका मूल स्थान एशिया माना जाता है। विश्व स्तर पर शहतूत की पत्तियों का प्रमुख उपयोग रेशम कीट पालन (सेरिकल्चर) में होता है, क्योंकि रेशम के कीट इसकी पत्तियों पर ही निर्भर रहते हैं। यह एक तीव्र वृद्धि करने वाला पतझड़ी एवं बहुवर्षीय पौधा है, जिसकी जड़ प्रणाली गहरी होती है तथा यह सूखा, प्रदूषण एवं कम उर्वर मृदा को सहन करने की क्षमता रखता है। भारत में शहतूत को “कल्पवृक्ष” कहा जाता है, क्योंकि इसके पत्ते, फल, शाखाएँ एवं लकड़ी सभी उपयोगी होते हैं।

थार हरित एवं थार लोहित शहतूत की उन्नत किस्में हैं, जो शुष्क क्षेत्रों में खेती हेतु उपयुक्त मानी जाती हैं तथा किसानों को अधिक लाभ प्रदान करती हैं। शहतूत की खेती अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी में की जाती है तथा पौधों को सामान्यतः वर्षा ऋतु में 3×3 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। यदि इसकी खेती रेशम उत्पादन हेतु की जाए तो प्रति वर्ष 30-35 टन प्रति हैक्टर पत्तियों का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, जबकि छंटाई के बाद शाखाओं का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। शुष्क एवं अनुपजाऊ क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगने के कारण शहतूत को भविष्य की महत्वपूर्ण ऊर्जा एवं बहुउद्देशीय फसल के रूप में माना जा रहा है।

जंगल जलेबी

इसे जंगल जलेबी या विलायती इमली भी कहा जाता है। यह एक स्वादिष्ट और पौष्टिक फल है। इसमें विटामिन सी, आयरन और एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं,



स्वादिष्ट शहतूत

जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसका सेवन पाचन तंत्र को मजबूत करता है और कब्ज जैसी समस्याओं से राहत में कारगर है। यह शरीर को तुरंत ऊर्जा प्रदान करता है तथा थकान कम करने में मदद करता है। इसकी खेती के लिए गर्म एवं शुष्क जलवायु सबसे उपयुक्त मानी जाती है। पौधे बीज या कलम विधि से तैयार किए जाते हैं और अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी में लगाए जाते हैं।

पौधों के बीच लगभग 5 से 6 मीटर की दूरी रखी जाती है ताकि उनका विकास सही ढंग

से हो सके। नियमित सिंचाई, जैविक खाद तथा समय-समय पर छंटाई करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। यह पेड़ कम देखभाल में भी लंबे समय तक फल देता है और किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होता है। इसके फल का उपयोग खाने के साथ-साथ औषधीय उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है।

भारतीय शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में उद्यानिकी फसलों के विकास की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं। यदि जल प्रबंधन,



जंगल जलेबी

पीलू

पीलू या टूथब्रश ट्री साल्वाडोरेसी कुल का एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी वृक्ष है, जो शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह एक सदाबहार, अधिक शाखायुक्त वृक्ष या झाड़ी है, जिसकी छाल धूसर रंग की एवं गहरी दरारों वाली होती है तथा इसकी खेती मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब तथा दक्षिण भारत के कुछ भागों में की जाती है। पीलू अत्यधिक लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी सफलतापूर्वक वृद्धि करता है और इसे पवनरोधक, आश्रय पट्टी तथा बंजर भूमि के वनीकरण हेतु उपयोगी माना जाता है। इसके फल स्वाद में मीठे, सुगंधित एवं हल्के तीखे होते हैं, जिन्हें ताजा, सुखाकर अथवा पेय उत्पादों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। पौधे की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं का उपयोग सब्जी एवं सलाद के रूप में किया जाता है, जबकि बीजों से प्राप्त तेल साबुन एवं डिटरजेंट उद्योग में उपयोगी होता है। पीलू में जनवरी से मार्च तक पुष्पन तथा मई माह में फलन होता है तथा एक परिपक्व वृक्ष से लगभग 10-15 किलोग्राम ताजे फल प्राप्त होते हैं। इसकी खेती बीज द्वारा की जाती है तथा पौधों को वर्षा ऋतु में 5-6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है; यह कम पानी एवं न्यूनतम देखभाल में भी अच्छी वृद्धि करता है। शुष्क क्षेत्रों में इसकी उच्च सहनशीलता, पोषणीय महत्व एवं औद्योगिक उपयोगिता के कारण पीलू भविष्य की महत्वपूर्ण फल एवं वानिकी फसल के रूप में उभर रहा है।

गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री, आधुनिक कृषि तकनीकों, प्रसंस्करण एवं विपणन सुविधाओं पर समुचित ध्यान दिया जाए, तो ये क्षेत्र न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं, बल्कि किसानों की आय एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ बना सकते हैं। शुष्क क्षेत्रीय उद्यानिकी भविष्य में सतत कृषि विकास एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।